पंडित भीमसेन जोशी



पंडित भीमसेन जोशी

किशोर कुमार

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

पंडित भीमसेन जोशी



पंडित भीमसेन जोशी हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के आखिरी कुछ कलाकारों में से एक थे। उन्हें सुर की ऐसी देन मिली थी, जो अपने अंदर दर्द और खुशी की बारीकियों को समेटे हुए थी तथा जिसके सहारे वे अपने श्रोताओं को उद्दात ऊँचाइयों तक ले जाते थे। 'किराना घराना' से ताल्लुक रखनेवाले जोशी में दुर्लभ प्रतिभा थी। उन्होंने अपनी 'घराना' संस्कृति को किसी रूढिवादी की तरह सख्ती से नहीं अपनाया, बल्कि उसे अपनी संवेदनशीलता और रचनात्मकता से एक नए साँचे में ढाला।

पंडित भीमसेन जोशी का पूरा नाम भीमसेन गुरुराज जोशी था। उनका मध्य नाम गुरुराज था, जो असल में उनके पिता का नाम था। भीमसेन नाम उन्हें अपने दादाजी भीमाचार्य के नाम से मिला, क्योंकि उनकी माँ गोदावरी बाई का मानना था कि भीमाचार्य ने भीमसेन के रूप में फिर से जन्म लिया है।

भीमसेन जोशी का जन्म 4 फरवरी, 1922 को एक कन्नड़ परिवार में हुआ था। उनका परिवार उत्तर कर्नाटक के धारवाड़ जिले में एक छोटे से शहर गडगा में रहता था। 'तानपुरा' और 'पखावज' की संगत में उनके दादाजी के द्वारा किया जानेवाला भगवद् पुराण का पाठ बहुत प्रसिद्ध था। शब्दों की शुद्ध प्रस्तुति से वह अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया करते थे।

गोदावरी बाई को मधुरवाणी ईश्वरीय देन के रूप में मिली थी। मीठे सुर में गाए उनके कन्नड़ भक्ति गीत उस नन्हे बालक के कानों में पड़ते थे। अपनी माँ के गाए 'भजन' को सुनकर वह मासूम मुसकराने लगता था।

भीमसेनाचार्य के दो बेटों का संगीत से जरा भी लगाव नहीं था। उनके बड़े बेटे, गुरुराज एक शिक्षक थे और उन्होंने भाषाओं में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की थी। वह संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् थे, जिन्होंने कन्नड़-अंग्रेजी शब्दकोश की रचना की। इसके अतिरिक्त, उन्होंने कर्नाटक के संत राघवेंद्र स्वामी के उपदेशों को अंग्रेजी में लिखा। उनकी मृत्यु 86 वर्ष की उम्र में हुई। अपने अंतिम समय तक वे अपने कार्य में जुटे रहे। अपने प्रसिद्ध पुत्र के विषय में एक छोटी पुस्तिका लिखने का भी श्रेय उन्हें ही जाता है। यह उनके पुत्र की जीवनी भी है। यह इस मायने में अनोखी है, क्योंकि एक पिता ने अपने पुत्र की गाथा लिखी है।

भीमसेन के चाचा गोविंदाचार्य जाने-माने कन्नड़ लेखक, नाटककार और प्रकाशक थे। भीमसेन ने यदाकदा अपने चाचा के कुछ नाटकों में कुछ किरदार भी निभाए और अपनी महान प्रतिभा का परिचय दिया।

भीमसेन का जन्म एक बेहद प्रतिभाशाली परिवार में हुआ था। अपने 16 भाई-बहनों में वे सबसे बड़े थे। बाल्यकाल में ही उनकी माता का निधन हो गया और उनका लालन-पालन उनकी सौतेली माँ ने किया, क्योंकि उनके पिता ने फिर से विवाह कर लिया था।



माँ के 'भजनों' ने उन पर अमिट छाप छोड़ दी थी। उनकी परवरिश ही संगीत के सान्निध्य में हुई, जो सात वर्ष की आयु को प्राप्त करते-करते उनके लिए एक जुनून बन चुकी थी। इस अवस्था के दौरान उन्हें अपने दादाजी का 'तानपुरा' मिला। संगीत को लेकर भीमसेन के अंदर इतना जुनून था कि मसजिद से आती 'नमाज' की आवाज सुनकर भी वे घर से बाहर निकल पड़ते थे। वह अकसर 'भजन' सुना करते थे और कई बार तो 'भजन' गानेवाले जहाँ भी जाते, उनके साथ-साथ चल पड़ते थे। चलते-चलते जब थक जाते तो, जहाँ कहीं कोई स्थान दिखता, वे वहीं सो जाते थे। उनके पिता की परेशानी बढ़ गई थी, क्योंकि अकसर या तो कोई परिचित उन्हें घर तक लेकर आता था या फिर पुलिस उन्हें घर तक पहुँचाती थी। अपने बेटे के अकसर लापता हो जाने की वजह से ही गुरुराज ने उनकी शर्ट के पीछे उनका नाम और घर का पता लिखवा दिया।

गुरुराज जानते थे कि उनके पुत्र का झुकाव संगीत के प्रति है, लेकिन उनकी इच्छा थी कि उनका पुत्र पढ़-लिखकर किसी पेश को अपनाए। भीमसेन एक अच्छे छात्र थे, लेकिन पढ़ाई से कहीं ज्यादा उन्हें संगीत पसंद था। उनकी याददाश्त बेहतरीन थी और जो कुछ भी वह पढ़ लेते थे, उनके दिमाग में जैसे छप जाता था। स्कूल के बाद, वह एक ग्रामोफोन की दुकान पर चले जाते और जो गीत दुकानदार अपने ग्राहकों के लिए बजाता था उसे गौर से सुना करते थे। यहीं उन्होंने सन् 1930 के दशक के ज्यादातर गीतों को याद कर लिया। उन्होंने कुछ 'भजन' भी सीख लिये। इन भजनों को, जिन्हें उन्होंने खुद ही सीखा था, हर गुरुवार को स्थानीय मंदिर में गाते थे और उसे सुनकर सारे लोग, यहाँ तक कि उनके माता-पिता भी मंत्रमुग्ध रह जाते थे।



इसके बाद ही उनके पिता ने उनकी संगीत की शिक्षा के लिए एक धोबी को रखा। यह व्यवस्था कुछ महीनों तक ही चली। फिर गुरुराज ने बादामी के श्यामाचार्य को संगीत की शिक्षा की जिम्मेदारी सौंपी। उनसे भीमसेन ने गायन

और हारमोनियम की शिक्षा ग्रहण की। भीमसेन संगीत के साथ-साथ अपनी शिक्षा को भी आगे बढ़ाते रहे। फिर एक दिन उन्होंने उस्ताद अब्दुल करीम खान का एक रिकॉर्ड सुना और प्रण किया कि वे उनके जैसा ही गाएँगे।

यह उनके जीवन का एक अहम मोड़ था। फिर उन्हें अपने पिता के साथ सवाई गंधर्व को सुनने का मौका मिला। वे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने पिता से सवाई गंधर्व से संगीत सीखने की इच्छा जता दी। जब उनके पिता ने उन्हें नहीं भेजा तो सिर्फ ग्यारह वर्ष की आयु में ही वह घर से भाग निकले।

उन्होंने ट्रेन पकड़ी और बिना टिकट ही बीजापुर पहुँच गए। अपने गुरु की तलाश में वहाँ से दिल्ली पहुँचे और फिर ग्वालियर आ गए। ग्वालियर में उन्होंने माधव संगीत विद्यालय में संगीत की शिक्षा लेनी शुरू की। यहाँ उन्हें एक समूह में सिखाया जाता था। भीमसेन चाहते थे कि उन्हें अकेले में शिक्षा दी जाए, फिर भी उन्होंने संस्थान में जाना जारी रखा। जब संतुष्टि नहीं मिली, तब वह कोलकाता, दिल्ली और फिर वहाँ से जालंधर चले गए। उनकी तलाश आखिरकार वापस घर लौटकर ही खत्म हुई, जहाँ वे सवाई गंधर्व के शिष्य बने, जो अब्दुल करीम खान के शिष्य थे, जिनकी प्रशंसा भीमसेन किया करते थे।

सवाई गंधर्व ने उन्हें अपना 'शिष्य' स्वीकार कर लिया और उन्होंने 'गुरु शिष्य परंपरा' के मुताबिक उन्हें शिक्षा देनी शुरू की। अपने गुरु के स्थान पर पहले अठारह महीने बिताने के बावजूद उन्हें संगीत की कोई शिक्षा नहीं दी गई, क्योंकि उनकी आवाज फट जाती थी। इस दौरान उनकी लगन की भी कड़ी परीक्षा हुई।



भीमसेन अपने गुरु के साथ 5 वर्षों तक रहे और इस दौरान उन्हें 'तोड़ी', 'मुल्तानी' और 'पुरिया' रागों की शिक्षा दी गई। वह अपने गुरु के साथ संगीत समारोहों में भी जाते थे और इस दौरान उन्होंने सीखा कि संगीत समारोह में प्रस्तुति कैसे की जाती है। जल्दी ही उन्होंने भी अपना प्रदर्शन शुरू किया और लोग उन्हें जानने लगे। पहले उन्हें अपने संगीत समारोहों से ज्यादा पैसे नहीं मिल पाते थे। बस इतना मिल जाता था कि सफर का खर्च निकल जाए। वे बिना पैसे लिये भी संगीत समारोह में गाया करते थे। हालाँकि, इस दौरान उन्होंने व्यापक अनुभव प्राप्त किया।

जल्दी ही उनके श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी और एक बड़े दायरे में उनकी ख्याति फैली और प्रशंसा की जाने लगी। संगीत में गहरी रुचि रखनेवाले सारस्वतों ने भौतिक रूप से उनकी काफी मदद की।

संगीत में भीमसेन की रुचि वहीं तक सीमित नहीं थी, जहाँ तक उन्होंने सीखा था। वह लगातार नए प्रयोग कर रहे थे और अपने दायरे को बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने संगीत को समझनेवाले शहरों का दौरा शुरू किया। अपने कुछ नियमित दौरों के क्रम में ही उन्होंने बेगम अख्तर, रसूलन बाई और सिद्धेश्वरी देवी को सुना और वे उनके संगीत से बहुत प्रभावित हुए। इसी दौरान, उन्हें मुश्ताक हुसैन खान को भी सुनने का मौका मिला, जिनका तरीका नायाब था।

'गजल', 'ठुमरी' और दादरा में काव्य परंपरा की अभिव्यक्ति का अपना ही आकर्षण होता है। भीमसेन पर उनका भी प्रभाव पड़ा और फिर उन्होंने इनकी शिक्षा से अपन संगीत को समृद्ध बनाने के लिए उत्तर प्रांतों का दौरा करने का फैसला किया।

इसी अवधि में, उन्होंने मुंबई में अपना पहल कंसर्ट किया। इस कंसर्ट ने उन्हें शोहरत और कामयाबी दिलाई। फिर वह रामपुर गए और मुश्ताक हुसैन खान के शिष्य बने, जिनसे उन्होंने 'नात मल्हार' सीखा। जल्दी ही रामपुर से वे लखनऊ आ गए। वहाँ उन्होंने रेडियो पर एक कलाकार को गाते सुना और सीधे आकाशवाणी के स्टूडियो पहुँच गए। उनकी मुलाकात उस कलाकार से हुई, जो कोई और नहीं बेगम अख्तर थीं।



उन्होंने अपना परिचय दिया और उनसे 'भैरवी' सुनने का आग्रह किया। भीमसेन को सुनकर बेगम अख्तर बहुत प्रभावित हुईं और स्टेशन निदेशक से आग्रह किया कि उन्हें स्टाफ आर्टिस्ट के तौर पर नियुक्त कर लें।

उनकी मुलाकात बिसमिल्लाह खान और कई अन्य कलाकारों से भी हुई। लखनऊ में उन्होंने अपना यादगार समय बिताया, क्योंकि उन्हें 'पूर्वी गायकी' सुनकर आनंद आता था। इसी समय दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया और अपने पिता के आग्रह पर लखनऊ छोड़कर वापस अपने घर लौटना पड़ा। घर लौटने से पहले वह मुंबई गए, जहाँ आकाशवाणी में एक ऑडिशन दिया और चुन लिये गए।

1944 में एच.एम.वी. के साथ एक रिकॉर्डिंग आर्टिस्ट के तौर पर उन्होंने शुरुआत की। कंपनी ने उनके दो हिंदी के और दो कन्नड़ भाषा में भक्ति गीतों के रिकॉर्ड जारी किए। कंपनी ने उनके कई गीतों को रिकॉर्ड किया और 1984 में वे पहले हिंदुस्तानी गायक थे, जिन्होंने प्लैटिनम डिस्क जीता।

भीमसेन को सबसे बड़ी कामयाबी 1946 में मिली, जब अपने गुरु के 60वें जन्मदिन पर 'मियाँमल्हार' राग सुनाकर उन्होंने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। उन्हें अपने शानदार गुरु का काबिल शिष्य कहा गया। उनके गुरु ने भी इस बात को स्वीकार किया।



भीमसेन जोशी संगीत की दुनिया में एक चमत्कार से कम नहीं थे। श्रोता उनके गीतों को सुनकर भाव-विभोर हो जाते थे। संगीत में उनकी प्रवीणता से संगीत की दुनिया का हर व्यक्ति चकित रह गया था।

राष्ट्रीय महत्त्व के कई अवसरों पर भी उनके गीतों को सुना गया। भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगाँठ पर उन्होंने लता मंगेशकर के साथ संसद् भवन में गीत गाया।

राष्ट्रीय एकता पर बनी लघु फिल्म 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' का शुरुआती छंद पंडित भीमसेन जोशी ने ही गाया था। इसे बहुत पसंद किया गया था। उन्होंने एक और फिल्म 'देश राग' में भी गाया, जो बेहद मशहूर हुआ। इन दो लघु फिल्मों ने उन्हें जन-जन में ख्याति दिला दी।

अपनी शक्तिशाली आवाज और साँस पर अद्भुत नियंत्रण के साथ उनकी प्रस्तुति का कोई जोड़ नहीं था। उनके अंदर संगीत के प्रति उत्कृष्ट संवेदनशीलता थी और मौलिक तत्त्वों पर मजबूत पकड़ थी। इसने उन्हें सर्वोत्कृष्ट हिंदुस्तानी गायक बना दिया। उन्होंने बुद्धिमत्ता और जुनून का एक सूक्ष्म मेल प्रस्तुत किया। इससे उनके संगीत में एक जीवंतता और आकर्षण समा जाता था।

शास्त्रीय संगीत के अलावा उन्होंने फिल्मों में पार्श्वगायक की भूमिका भी निभाई। तानसेन के जीवन पर बनी बाँग्ला फिल्म में उन्होंने ध्रुपद गायक के रूप में अपने सुर दिए। मशहूर मराठी व्यंग्यकार 'पू ला' देशपांडे द्वारा निर्मित और निर्देशित फिल्म 'गुलाचा गणपति' में भी उन्होंने गीत गाए। भीमसेन ने हिंदी फिल्म 'बसंत बहार' और 'भैरवी' के गीतों को भी गाया है।



1953 में भीमसेन जोशी ने अपने गुरु को श्रद्धांजलि देने के लिए उनकी पहली पुण्यतिथि पर आर्य संगीत

प्रसारक मंडली के साथ मिलकर सवाई गंधर्व संगीत उत्सव का आयोजन किया। 2002 में उनके अवकाश लेने तक यह उत्सव हर वर्ष मनाया जाता रहा। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्रेमियों को इस उत्सव का इंतजार रहा करता था।

पंडित भीमसेन जोशी को कारों का भी बहुत शौक था। उन्हें कार और तेज ड्राइविंग पसंद थी। पहले उनके पास एक पुरानी मोटरसाइकिल थी, लेकिन बाद में उन्होंने एक फिएट खरीदी और आगे चलकर एक मर्सीडीज के मालिक बने। उनके पास एक सिल्वर फोर्ड भी थी, जिसमें सवार होकर वे पुणे के सवाई गंधर्व उत्सव में आते थे।

उन्हें अपनी कार को सजाना, सँवारना और उसमें तेज ड्राइविंग करना पसंद था। उनके बेटे और शिष्य, श्रीनिवास जोशी के मुताबिक एक बार पुणे के करीब वसई में उनकी कार खराब हो गई, तब उनके पिता ने स्वयं कार की मरम्मत की थी। एक बार पुणे-मुंबई के सफर के दौरान भीमसेन जोशी ने अपने मित्र के साथ रेस लगाई और अपने दोस्त से पहले मुंबई पहुँच गए, जबकि उनके मित्र ने अपना सफर एक घंटे पहले ही शुरू कर दिया था।

कारों के शौकीन होने के अलावा, वे तैराकी में माहिर थे। उन्हें योग में गहरी दिलचस्पी थी और युवावस्था में फुटबॉल के खिलाड़ी थे। उन्हें शराब की लत लग गई थी, लेकिन जब इसका असर उनके कॅरियर पर पड़ने लगा तो उन्होंने उसे छोड़ने में देर नहीं की।

उनके अंदर किसी प्रकार की झिझक नहीं थी और वे संगीत समारोह में जाने के लिए बैलगाड़ी या साइकिल की सवारी भी कर लिया करते थे। एक बार कंसर्ट में सही समय पर पहुँचने के लिए उन्होंने एक किसान से साइकिल उधार ली। यह वाकया तब का है, जब वह पंढरपुर से नागपुर जा रहे थे और रास्ते में कार खराब हो गई। कार को ठीक करना संभव नहीं था और तब उन्होंने एक किसान से साइकिल माँगी। उनके शुरुआती जीवन की एक घटना भी बड़ी दिलचस्प है। पुणे से फल्टन तक अकसर उन्हें ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हारमोनियम लेकर साइकिल की पिछली सीट पर सफर करना पड़ता था। इन घटनाओं से स्पष्ट होता है कि उनके लिए संगीत समारोह का कितना महत्त्व था।

आगे चलकर अपने जीवनकाल में उन्होंने एक-दूसरे से मीलों दूर अलग-अलग शहरों में जाना पड़ता था। इस दूरी को कार से तय करना मुमकिन नहीं होता था और तब वह हवाई सफर किया करते थे। अकसर वह इतनी जल्दी-जल्दी एक जगह से दूसरी जगह के लिए उड़ान भरते थे कि इंडियन एयरलाइंस के पायलट और एयरपोर्ट के अधिकारी उन्हें देखते रहने के अभ्यस्त हो गए थे। उन्हें फ्लाइंग म्यूजिशियन ऑफ इंडिया कहा जाने लगा।

उनके गायन का कॅरियर सात दशक लंबा था। संगीत के प्रति उनके योगदान के लिए उन्हें अन्य राज्य स्तर के पुरस्कारों के अलावा पद्मश्री, पद्म भूषण, पद्म विभूषण और भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

उनके कई सफल शिष्य भी हुए। उनमें से कुछ हैं मखवागुड़ी, श्रीपति पेडेगर, श्रीकांत देशपांडे और उनके पुत्र श्रीनिवास जोशी।



वास्तव में 31 दिसंबर, 2010 का वह दिन संगीत प्रेमियों के लिए दुखद दिन था, जब उन्हें सहयाद्री सुपरस्पेशलिटी अस्पताल में भरती कराया गया था। उनकी मृत्य अपने 89वें जन्मदिन से बस 11 दिन पहले 24 जनवरी, 2011 में हुई। उनका अंतिम संस्कार पूरे राजकीय सम्मान के साथ पुणे में किया गया।

❑❑❑